इकाई 18 औपनिवेशिक शासन का आर्थिक प्रभाव

इकाई की रूपरेखा

18.0 उद्देश्य

इस इकाई के द्वारा भारत पर ब्रिटिश आर्थिक प्रभाव का सर्वेक्षण किया गया है। इसके अंतर्गत कुछ महत्वपूर्ण पक्षों का विवेचन इकाई 14 से 17 में किया गया है। हमने इस इकाई में उन कुछ प्रश्नों का विवेचन किया है जिनको पहले की इकाइयों में छोड़ दिया गया था। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान सकेंगे कि:

- 1750 के दशक से अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी और अंग्रेज व्यक्तिगत व्यापारियों का प्रभुत्व हो जाने के साथ-साथ भारतीय व्यापारियों तथा बैंकरों की स्थिति में क्या परिवर्तन हुए,
- इस प्रभुत्व ने उन कारीगरों तथा किसानों को कैसे प्रभावित किया जहाँ पर अंग्रेजी कंपनी तथा व्यापारिक घरानों के द्वारा उत्पादनों को बाजार में लाया गया,
- अकालों ने ग्रामीण क्षेत्रों का कैसे सर्वनाश किया और शहरों का पतन कैसे हुआ,
- भारत से इंग्लैंड धन किस ढंग से भेजा गया।
- विदेशी व्यापार के प्रतिमानों ने भारत को एक औद्योगिक सामान निर्यातक से अंग्रेजों के द्वारा उत्पादित सामान का आयातक तथा कृषि सामानों एवं कच्चे पदार्थों का निर्यातक के रूप में कैसे परिवर्तित किया, और
- ब्रिटिश व्यापारियों ने इंग्लैंड में तथा सरकार ने भारत में क्यों रेलवे को प्रोत्साहित किया। वह कौन सी व्यवस्था थी जिसने अंग्रेज निवेशकर्त्ताओं को भारतीय रेलवे में पूँजी लगाने को प्रोत्साहित किया।

18.1 प्रस्तावना

"जितनी भी सरकारें हैं चाहे वह किसी भी देश की सरकार हो सौदागरों की पूर्णरूपेण कंपनी की यह सरकार संभवतः सबसे बदतर सरकार है।" 1776 में अपनी पुस्तक वेल्थ ऑफ नेशन्स में एडम स्मिथ ने यह विचार व्यक्त किया था।

इकाई 14 में आपको बताया गया है कि एडम स्मिथ ईस्ट इंडिया कंपनी के एकाधिकारवादी चरित्र का आलोचक था। उसकी आलोचना कंपनी को प्रदान किए गए कानूनी विशेषाधिकारों के विरुद्ध की गई आलोचना का एक भाग थी और कंपनी के इस एकाधिकार को क्रमशः 1813 एवं पुनः 1833 में समाप्त कर दिया गया। यूरोप में औद्योगिक क्रांति के प्रभाव तथा इसके कारण कैसे उपनिवेशवाद के नये स्वरूप का उदय हुआ, आप इन सबका अध्ययन इकाई 6 एवं 7 में कर चुके हैं। उपनिवेशवाद के इस

रूपांतरण के कारणवश भारत में कृषि के व्यवसायीकरण की भी प्रक्रिया शुरू हुई उसका विवेचन इकाई 16 में तथा भारत के अनौद्योगीकरण का विवेचन इकाई 17 में किया गया। अब हम उन दूसरे परिणामों के विषय में विवेचन करेंगे जो भारतीय अर्थव्यवस्था के उपनिवेशीकरण के फलस्वरूप पैदा हुए थे।

18.2 देशी पूँजी की अधीनता

वाणिज्य पूँजीवादी व्यापार की यूरोपीय व्यवस्था में भारतीय देशी व्यापारियों के लिए प्रारंभ में एक महत्वपूर्ण उपयोगिता थी। यूरोपीय व्यापारियों को निर्यात के लिए भारतीय माल के उपार्जन की आवश्यकता थी। लेकिन जैसे ही ईस्ट इंडिया कंपनी ने राजैनिक प्रभुत्व प्राप्त कर लिया और उसको भारतीय माल के निर्यात को खरीदने में प्रमुख स्थिति प्राप्त हुई वैसे ही स्थानीय व्यापारियों की स्थिति मात्र दलालों या एजेंटों की हो गई। व्यापार की कुछ शाखाओं में वे अंग्रेजी कंपनी के कारिंदे मात्र बन रह गये।

18वीं सदी के मध्य में भारत में कई भागों में देशी व्यापारियों के समुदाय फल-फूल रहे थे। इन समुदायों में गुजरात के समुद्री तट के हिंदू, जैन एवं बोहरा व्यापारी, राजस्थान के मारवाड़ी बनिये, वर्तमान केरल के सीपला, मौरियाई ईसाई तथा कोचीन के यहूदी, पंजाब एवं सिध के खत्री तथा लोहना, तमिल तथा आंध्र क्षेत्र के चेत्ती तथा कोमाती, बंगाल के वणिक आदि सम्मिलित थे। उनमें से कुछ अर्थात् गुजरात तथा केरल क्षेत्र के व्यापारी समुद्र पार व्यापार में प्रधान थे। ये सभी व्यापारिक समुदाय परवर्ती औपनिवेशिक काल में भारत की आंतरिक अर्थव्यवस्था में किसी न किसी रूप में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहे थे।

क) ये व्यापारिक समुदाय फसलों को धन में रूपांतरित करके कर एकत्रीकरण को सुविधाजनक बना देना थे। कभी-कभी ये जमींदारों एवं किसानों की ओर से राज्य को पेशगी में नकद धन अदा कर देते थे। अक्सर वे कर एकत्रित करने वालों को जमानत भी दे देते थे।

ख) व्यापारी एवं बैंकर्स राजस्व को धन के रूप में अदा करने की भी सुविधा प्रदान करते थे। उदाहरण के लिए जगत सेठ का बैंकिग घराना बंगाल के नवाब द्वारा मुगल सम्राट को अदा किये जाने वाले राजस्व की अदायगी करने के लिए हुण्डी या विनिमयपत्र को देता था।

ग) विशेषकर सर्राफों के द्वारा धन-परिवर्तन का किये जाने वाला कार्य काफी महत्वपूर्ण था। यह न केवल व्यापार के लिए बल्कि राज्य के लिए उन दिनों एक महत्वपूर्ण सेवा थी क्योंकि उस समय बहुत से क्षेत्रीय राज्य बन गये थे और वे अपनी-अपनी मुद्रा का प्रचलन कर देते थे और व्यापार के रास्तों से विदेशों से बहुत सिक्के भी आ गये।

घ) युद्धों के दौरान सेना के लिए सामग्री की आपूर्ति के लिए राज्य परंपरागत व्यापारिक समुदायों पर बहुत अधिक निर्भर करते थे। जैसा कि आप जानते हैं कि 17वीं सदी के अंतिम वर्षों से बहुत अधिक युद्ध होने लगे। अभियान के समय सेना को खाद्यान्नों की आपूर्ति, सेना के वेतन की अदायगी के लिए धन का देना, लूटे हुए सामान की बिक्री आदि के लिए राज्य व्यापारियों एवं बाजारों (अनाज एवं अन्य खाद्यान्न पदार्थों के बिस्थापित व्यापारी) पर निर्भर करते थे।

ज) व्यापारी एवं बैंकर्स राज्य एवं कुलीन वर्ग के लिए व्यापक रूप से महत्वपूर्ण थे। व्यापारी एवं बैंकर्स इस वर्ग को युद्ध या फसलों के बर्बाद होने से उत्पन्न संकटों में ऋण देते थे तथा सामान्य समय में भी इस वर्ग की जरूरतों को पूरा करने के लिए भी पैसा उधार देते थे।

इस प्रकार से हम देखते हैं कि परवर्ती-औपनिवेशिक काल में राज्य तथा व्यापारियों एवं बैंकर्स के बीच घनिष्ठ परस्पर निर्भरता कायम थी। जैसे ही अंग्रेजों एवं ईस्ट इंडिया कंपनी के प्रहारों के सम्मुख क्षेत्रीय राज्यों ने नतमस्तक होना प्रारंभ किया और कंपनी को शक्ति का प्रसार भारत में होने लगा वैसे ही भारतीय व्यापारिक समुदायों के लिए व्यापार के बहुत से क्षेत्र बंद होने लगे। इस संदर्भ में बंगाल के सरकारी बैंकर्स में जगत सेठ का उदाहरण दिया जा सकता है। 1765 में जब कंपनी ने बंगाल की दीवानी को प्राप्त कर लिया तब से

जगत सेठ का घराना सरकारी बैंकर्स न रहा। जगत सेठ के द्वारा मुद्रा जारी करने के अधिकार को धीरे-धीरे कंपनी ने ले लिया। ये बैंकिग घराने और अन्य इसी प्रकार के व्यापारी अपने यूरोपीय ग्राहकों को अंग्रेजी बैंकों तथा कलकत्ता के एजेंसी घरानों के हाथ खो बैठे।

18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में स्थानीय व्यापारियों की स्थिति में काफी परिवर्तन हुआ। बंगाल से निर्यात होने वाले मुख्य सामान कपड़े का उदाहरण हम देख सकते हैं। 1753 तक ईस्ट इंडिया कंपनी अन्य यूरोपीय कंपनियों की भाँति कपड़े की दलाली के लिए भारतीय व्यापारियों पर निर्भर करती थी। इन भारतीय व्यापारियों को दादनी व्यापारी कहा जाता था क्योंकि ये एजेंसी का कार्य करते थे। भारतीय कारीगरों तथा बुनकरों को दिए जाने वाले पेशगी धन को इन व्यापारियों के माध्यम से ही दिया जाता था। 1753 से ईस्ट इंडिया कंपनी ने इन स्वतंत्र दादनी व्यापारियों को गौमस्तों के द्वारा अलग हटाना शुरू कर दिया। गौमस्त कंपनी के एजेंट के तथा अपने कमीशन के लिए कंपनी पर निर्भर करते थे। कंपनी इनको इनके द्वारा एकत्रित किए गये कपड़े के मूल्य पर प्रतिशत के हिसाब से कमीशन देती थी। प्लासी की लड़ाई के बाद कंपनी के हाथों में बढ़ती राजनीतिक शक्ति ने उसे इस योग्य बना दिया कि वह पूर्णरूपेण इस गौमस्त व्यवस्था की ओर झुक गई। इस व्यवस्था ने भारतीय व्यापारियों को कमीशन प्राप्त करने वाला दलाल बना दिया। 1775 में इस व्यवस्था को ठेकेदारी प्रथा का नाम दिया गया और अंग्रेज व्यापारियों की स्थिति भारतीय दलालों की तुलना में और सुदृढ़ हो गई। अंततः 1789 में "प्रत्यक्ष एजेंसी" की प्रथा का प्रारंभ किया गया। इस प्रथा के द्वारा भारतीय बिचौलियों के साथ-साथ सभी प्रकार के भारतीय व्यापारियों का परित्याग कर दिया गया। धीरे-धीरे भारतीय व्यापारी को एक अधीनस्थ स्थिति में पहुँचा दिया गया। शोरा एवं नमक के व्यापार में उनको अधीनस्थता की स्थिति प्राप्त थी जबकि 18वीं सदी के अंत तक उनको कच्ची रेशम तथा सूती कपड़े के व्यापार से पूर्णतः अलग कर दिया गया था।

19वीं सदी के पूर्वार्द्ध में हुए निर्यात उद्योगों के पतन के कारणवश पुनः भारतीय व्यापारियों के अवसर और सीमित हो गये। जूट तथा अफीम ने व्यापार के जिन नये अवसरों को प्रदान किया उनमें भारतीय व्यापारियों को अंग्रेज व्यापारियों के अधीनस्थ या सहायक भूमिका दी गयी। 19वीं सदी के पूर्वार्द्ध में बंगाल में भारतीय व्यापारियों का काम महाजनी, कृषि एवं दस्तकारी के उत्पादनों के आंतरिक व्यापार को करना तथा विनिर्मित आयाती सामान की बिक्री करना था।

जहाँ एक ओर यह सत्य है कि भारतीय व्यापारियों पर विदेशी पूँजी का प्रभुत्व कायम हो गया था वहीं दूसरी ओर कुछ ऐसे क्षेत्र भी बचे रहे जिनमें भारतीय व्यापारियों ने अपने व्यापार का प्रसार किया एवं पूँजी का संचयन भी। जैसे कि बंबई प्रांत से अलग पश्चिमी भारत की देशी रियासतों में कपास एवं अफीम का काफी उत्पादन होने लगा था और रियासतों के इन दोनों कृषि उत्पादनों में भारतीय व्यापारियों का वर्चस्व बना रहा जिससे कि भारतीय व्यापारियों ने काफी बड़ी मात्रा में पूँजी का संचयन किया। 19वीं सदी के पूर्वार्द्ध में कुछ फारसी व्यापारी अफीम एवं कपास के बड़े निर्यातक हो गये थे, यही वह पूँजी संचयन है जिसके कारणवश बंबई में औद्योगिक निवेश हुआ तथा उस सूती कपड़ा उद्योग का विकास भी हुआ जिसने 20वीं सदी के प्रारंभिक वर्षों में मानचेस्टर के एकाधिकार को चुनौती दी।

18.3 प्रभुत्व, बाजार एवं उत्पादक

अब हम व्यापारियों के स्थान पर अपना ध्यान उत्पादकों पर केंद्रित करेंगे। ये उत्पादक किसान एवं कारीगर थे। हमें ऐसे उत्पादन के विषय में बहुत कम जानकारी है जो हमें राष्ट्रीय आमदनी के विषय में या कारीगरों तथा किसानों को होने वाली आमदनी के बारे में बता सकता हो। लेकिन हम उत्पादन तथा बाजार के उन तरीकों को जानते हैं जिनको 18वीं सदी के अंत में और 19वीं सदी के प्रारंभिक वर्षों में संगठित किया गया था। इसको ईस्ट इंडिया कंपनी की गतिविधियों, व्यक्तिगत व्यापार में व्यस्त, कंपनी के कर्मचारियों अंग्रेज "उन्मुक्त व्यापारियों" और एजेंसी घरानों के द्वारा कैसे प्रभावित किया गया? इन सबके विषय में आपका परिचय इकाई 14 में कराया गया है।

वाणिज्य पूँजीवादी कार्यक्रम का सार "सस्ता खरीदना एवं महँगा बेचना" है। अगर किसी के पास एकाधिकार है तब वह यह सब सरलता से कर सकता है। यह सब और भी आसान हो जाता है जब किसी के पास जोर जबरदस्ती एवं राज्य शक्ति का प्रयोग करने की क्षमता हो। ईस्ट इंडिया कंपनी की सफलता का यही सार था कि उसने सरकार के रूप में बंगाल तथा उसके द्वारा विजित अन्य क्षेत्रों में अपने व्यापार के प्रसार एवं समृद्धि के लिए जोर-जबरदस्ती एवं राज्य शक्ति का प्रयोग किया। इसका विस्तृत विवरण खंड 3 में दिया गया है।

1770 तथा 1780 के दशकों में ईस्ट इंडिया कंपनी और उसके उन कर्मचारियों का जो व्यक्तिगत व्यापार में व्यस्त थे, कुछ उपभोग वस्तुओं के व्यापार पर सामूहिक एकाधिकार स्थापित हो गया था। यह बात बंगाल के सूती कपड़ों के विषय में विशेष उल्लेखनीय थी। इन सब के विषय में आपको इकाई 14 में बताया जा चुका है। इसका तात्पर्य यह था कि कारीगरों के पास कोई विकल्प न रह गया सिवाय इसके कि वे अपने उत्पादकों को कंपनी एवं इसके कर्मचारियों को बेचें। यह स्थिति कैसे-उत्पन्न हुई? इसका मुख्य कारण ज़ोर-जबरदस्ती का प्रयोग किया जाना था।

18वीं सदी के मध्य तक कारीगरों के अपने उत्पादनों में अंग्रेज, फ्रांसीसी, डच तथा भारतीय व्यापारियों को बेचने के लिए पूर्ण स्वतंत्रता एवं आजादी हासिल थी। लेकिन 1750 के दशक से गौमस्तों ने बुनकरों को अपना उत्पादन अंग्रेजों को बेचने के लिए बाध्य करना शुरू कर दिया। सैनिक ताकत के बल पर प्रतियोगिता से फ्रांसीसी तथा डच व्यापारियों को अलग कर दिए जाने पर यह प्रक्रिया और तेज हो गई। अंग्रेजी फैक्ट्रियों में छल-कपट और धोखाधड़ी से कपड़ों को कम मूल्य पर बल पूर्वक प्राप्त करना सामान्य बात हो गई थी। गौमस्तों की एजेंसी के माध्यम से कंपनी के कर्मचारियों ने बुनकरों के साथ निर्दयता का व्यवहार किया तथा उनका मनोबल गिराया। 1780 के दशक में इस प्रथा को खतबंदी व्यवस्था के नाम से व्यवस्थित कर दिया गया। उनको पेशगी दी जाती तथा फिर कंपनी के लिए कपड़ों का उत्पादन करने के लिए बाध्य किया जाता। बंगाल सरकार के द्वारा ऐसे अधिनियम बनाए गये जिनके अंतर्गत कारीगरों को अपने उत्पादन कंपनी को बेचने के लिए इकरारनामा करना पड़ता था।

इस प्रकार कारीगरों को धीरे-धीरे बंधुआ मजदूरों की स्थिति में पहुँचा दिया गया। ऐसा उनके उत्पादनों को बाजार में स्वतंत्र रूप से बेचने के अधिकार का हनन करके किया गया और इसको करने के लिए जोर-जबरदस्ती तथा सरकार द्वारा बनाए गये कानूनों एवं अधिनियमों का प्रयोग किया गया। दूसरा उदाहरण नील की खेती का दिया जा सकता है, इसका विस्तृत विवरण इकाई 16 में किया गया है। रैयत व्यवस्था के अंतर्गत नील बागानों के अंग्रेज मालिकों ने किसानों को नील की खेती तथा इसको कम से कम दाम पर सप्लाई करने के लिए बाध्य किया गया। इससे कुछ कम लेकिन अफीम की खेती करने में भी जोर जबरदस्ती का प्रयोग किया गया।

अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि अर्ध-एकाधिकार तथा जोर-जबरदस्ती के साधनों का परिणाम क्या हुआ? इसने खरीदारों के बाजार को पैदा किया अर्थात् वह स्थिति जिसके अंतर्गत खरीददार अपने शर्तों के अनुरूप मूल्य अदा कर सकता है। खरीददार ईस्ट इंडिया कंपनी, इसके कर्मचारी और बाद में अंग्रेज व्यापारी, बागान मालिक तथा एजेंसी कंपनियाँ थीं। अंग्रेजों के पास एकाधिकार एवं बल प्रयोग की शक्ति का लाभ था। अतः उन्होंने 18वीं सदी के अंतिम दशकों में बुनकर से कपड़ों को कम से कम मूल्य पर खरीदा। यह करना उनके लिए निश्चय ही स्वाभाविक था। इसी तरह की नीति अंग्रेज व्यापारियों ने 19वीं सदी के प्रारंभिक दशकों में नील एवं अफीम की खेती करके अपनायी। जितने कम दामों पर संभव हो सकता था नील तथा अफीम के बागान मालिकों ने किसानों से इसको खरीदा। ऐसा करने से जो स्वाभाविक भी था कि बुनकरों एवं नील उत्पादकों को जितना कम दाम दिया जाता अंग्रेज व्यापारियों के लाभांश में उतनी ही वृद्धि हो जाती। इस प्रकार कारीगर एवं किसान एक जोर-जबरदस्ती वाले माल का उत्पादन कर रहे थे और इस माल के उत्पादन से ये कारीगर एवं किसान अपनी दो वक्त की रोटी से अधिक कुछ भी प्राप्त नहीं कर पाते थे।

अगर ऐसी स्थिति है कि सूती कपड़ों, नील या अफीम के उत्पादन में किसी प्रकार की पूँजी निवेश के बिना ही व्यापारिक पूँजी को अपार मुनाफा होता हो तब आप ही विचारिये कि यदि व्यापारी केवल खरीदकर इस प्रकार का मुनाफा अर्जित कर रहा हो तब वह व्यापारी उत्पादन प्रक्रिया में अपनी पूँजी क्यों निवेश करेगा? अगर हम उस स्थिति पर विचार करें

जिसमें उत्पादनकर्ता को मात्र अपना एवं अपने परिवार का पेट भरने मात्र अपने उत्पादकों का दाम मिलता हो तब वह कैसे पूँजी को एकत्रित करेगा अर्थात् उसके पास अपने औजारों एवं उपकरणों पर खर्च करने लायक भर पूँजी भी जमा नहीं होगी। यदि उसको अपने उत्पादकों को बहुत कम दाम पर बेचने के लिए बाध्य किया जाता है तब वह अपने हाथ में पूँजी का संचयन कैसे कर सकता है? इससे आगे यह प्रश्न उत्पन्न होता है तब अधिक उत्पादन करने के लिए नये औजारों, उपकरणों एवं मशीनों में पूँजी निवेश करने के लिए कौन पूँजी का संचयन करेगा? कहने का तात्पर्य यह है कि तकनीकी विकास एवं उत्पादन में वृद्धि के लिए कौन निवेश करेगा? इन सभी प्रश्नों का एक ही उत्तर है। हमने उपरोक्त जो प्रश्न उठाए हैं या कुछ व्याख्यायें प्रस्तुत करने का प्रयास किया है उन सबका सार इसमें निहित है कि 19वीं सदी के भारत के तकनीकी विकास एवं उत्पादन में एक ठहराव पैदा हो गया था। किसी को भी ईमानदारी से यह स्वीकार करना ही होगा कि भारतीय व्यापारिक एवं धन ऋण पूँजी ने वही भूमिका अदा की जो भूमिका इस संदर्भ में विदेशी व्यापारिक ब्याज के द्वारा की जाती है। उस समय केवल अंतर यह था कि भारतीय व्यापारिक एवं धन ऋण पूँजी के इस पैटर्न को प्रारंभिक स्थिति में स्थापित करने में राज्य शक्ति ने मजबूत समर्थन प्रदान किया।

संक्षेप में पूँजी उत्पादन प्रक्रिया से बाहर बनी रही। 18वीं सदी में पूँजी का निवेश उत्पादन के संगठन एवं तकनीकी के विकास में नहीं किया गया। यद्यपि यह निश्चय ही सत्य है कि यह विशेषता एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में, एक उद्योग से दूसरे उद्योग में भिन्न-भिन्न थी। कुछ मामलों में पूँजीवादी संलग्नता काफी थी। बंगाल में कच्ची रेशम के उत्पादन उद्योग में मजदूरी पर मजदूरों को रखे जाने की परंपरा थी। नील की निजाबादि व्यवस्था के अंतर्गत मालिक लोग मजदूरों को नकद मजदूरी पर रखकर काम कराते थे। इसका विवरण इकाई 16 में किया गया है। लेकिन इस प्रकार के उदाहरण अपवाद मात्र हैं और इसने उत्पादकों के बहुत छोटे भाग को ही प्रभावित किया।

18.4 शहर एवं ग्रामीण क्षेत्र

लोगों की संपन्नता का अनुमान लगाने के अल्प उपायों के अभाव में इतिहासकारों ने जल्दी-जल्दी पड़ने वाले एवं गहन अकालों को अपने अनुमान का आधार बनाया। इनसे जनता, विशेषकर कृषि की आर्थिक स्थिति का संभावित अनुमान लगाया जा सकता है। अकालों के दौरान मरने वाले लोगों की संख्या से अकाल की व्यापकता का अंदाज किया गया है। लेकिन इस प्रकार के आँकड़े अधिकतर मामलों में उपलब्ध नहीं हैं। इससे भी कठिन कार्य यह है कि यह कैसे पता लगाया जाए कि कितनी मृत्यु अकाल में भूख के कारण हुई और कितनी महामारी फैलने से क्योंकि अकालों के समय में महामारियों का फैलना सामान्य बात थी। इसलिए स्पष्ट आँकड़ों के अभाव में हमें अकालों के सामान्य विवरण पर ही निर्भर करना पड़ता है।

18वीं सदी के मध्य से भारत में बड़े-बड़े अकाल पड़े 1759 में उत्तरी भारत में सिंध; 1783 में वर्तमान उत्तर प्रदेश, काश्मीर, राजस्थान; 1800-04 में पुनः वर्तमान उत्तर प्रदेश और 1837-38 में उ. प्र., पंजाब तथा राजस्थान अकालों से प्रभावित हुए। पश्चिमी भारत वर्तमान गुजरात एवं महाराष्ट्र में 1787, 1790-92, 1799-1804, 1812-13, 1819-20, 1824-25, 1833-34 अकाल के वर्ष थे। दक्षिण भारत में 1781-82, 1790-92, 1806-07, 1824-25, 1833-34 और 1853-55 में अकाल पड़े। पूर्वी भारत में अपेक्षाकृत कम अकाल पड़े। लेकिन बंगाल का 1770 का अकाल इस समय के सभी अकालों में सबसे भयंकर था। इस अकाल में लगभग एक करोड़ लोग अर्थात् बंगाल की जनसंख्या के एक तिहाई लोग मारे गए। ब्रिटिश शासन के दौरान घटित होने वाले अकालों के कई विभिन्न कारण थे। कुछ उपरोक्त वर्णित अकाल उन क्षेत्रों में भी पड़े थे जिन पर अंग्रेजों का शासन नहीं था। 18वीं तथा 19वीं सदी में आये दिन अंग्रेजों एवं क्षेत्रीय राज्यों के मध्य युद्ध होते रहते थे और इन युद्धों के कारण जो भयंकर तबाही होती थी वह अकाल का कारण बन जाती थी। देश के जिन भागों में अंग्रेजों का शासन था उन भागों में अंग्रेजी प्रशासन समय-समय पर भू-राजस्व की मात्रा में वृद्धि करता रहता था। अंग्रेज अधिकारी अपने पूर्ववर्तियों की अपेक्षा अधिक कठोरता से राजस्व की वसूली करते थे। उन्होंने खराब मौसम या फसल के नष्ट होने की हालात में भी किसानों को छूट देने से इंकार किया। मौसमी वर्षा न होने के साथ-साथ राजस्व नीति की कठोरता भी 1770 के बंगाल अकाल

का बड़ा कारण थी। कुछ मामलों में अंग्रेज व्यापारियों एवं उनके एजेंटों की गतिविधियों ने भी अकाल के संकट को बढ़ाने में और योगदान किया। 1170 के अकाल के समय कंपनी अधिकारी अनाज व्यापार में और अधिक मुनाफा बटोरना चाहते थे जिससे अकाल का संकट और गहराया। 19वीं सदी के प्रारंभ में अनाजों के स्थान पर निर्यात के लिए व्यवसायिक फसलों को ताकत के बल पर पैदा करना भी एक कारण था। जिन क्षेत्रों पर अंग्रेजों का शासन था उनमें सिचाई सुविधाओं की मरम्मत तथा प्रसार की अवहेलना की गई जिस से सूखे की संभावना काफी बढ़ गई। 19वीं सदी के मध्य से नवीन स्थापित सार्वजनिक निर्माण विभाग ने ब्रिटिश भारत में सिचाई सुविधाओं की आवश्यकताओं की ओर ध्यान देना प्रारंभ किया। राजस्व नीतियों में भी कुछ लचीलापन आया और 1880 से अकाल सहायता कार्यों को व्यवस्थित कर दिया गया। संतुलित तौर पर यह भी निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यदि फसल बरबाद होने पर अकाल के दौरान मृत्यु दर में वृद्धि नहीं होती है तब किसानों को आर्थिक रूप से संतोषजनक जीवन व्यतीत करने वाला समझा जा सकता है। लेकिन इस तरह आकलन करने पर भी हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं, कि ब्रिटिश शासन परवर्ती पतित शासन से किसी भी मायने में बेहतर नहीं था।

5. अकाल क वृष्टि की चित्रकार की कल्पना

ग्रामीण क्षेत्रों से मुड़कर जब हम कस्बों एवं शहरों पर अपनी नजर दौड़ाते हैं तब हम दो धाराओं को पाते हैं। एक ओर कुछ पुराने शहरी केंद्रों का पतन तथा आबादी कम होती है तथा दूसरी ओर कुछ नये शहरों तथा कस्बो का तेजी के साथ विकास होता है। नये नगरों एवं कस्बों के विकास का कारण अंग्रेजी वाणिज्य एवं प्रशासन था। इसके मुख्य उदाहरण भविष्य के महानगर कलकत्ता, बंबई एवं मद्रास हैं। इसी के साथ-साथ प्रशासनिक केंद्रों तथा आयात किये गये औद्योगिक सामानों तथा निर्यात होने वाले कृषि मालों के क्रय-विक्रय केंद्रीय स्थानों के रूप में कुछ कस्बों का भी तेजी के साथ विकास हुआ। उन नये विकसित होते, शहरी केंद्रों की विशेषता यह थी कि यूरोप के विकसित होते नगरों की भाँति ये औद्योगिक उत्पादनकर्ता नगरों के रूप में विकसित नहीं हो रहे थे। 19वीं सदी के पूर्वार्द्ध में जिन कस्बों एवं नगरों का विकास हुआ वे औद्योगिक उत्पादन केंद्र बने अपितु उनकी अधिकतर जनसंख्या मुख्य रूप से सर्विस सेक्टर अर्थात् क्रय-विक्रय, ट्रांसपोर्ट, प्रशासनिक आदि गतिविधियों में संलग्न थी।

लेकिन इस समय में मुगलों के प्रमुख पुरानें नगर दिल्ली तथा आगरा और क्षेत्रीय शक्ति के प्रतीक ढाका, मुर्शिदाबाद, पटना, श्रीरंगपट्टम, हैदराबाद आदि ठहराव की स्थिति में थे या फिर उनका ह्रास हो रहा था। इसका मुख्य कारण यह था कि राजनैतिक गतिविधियों के केंद्र इन नगरों से दूर नये औपनिवेशिक महानगरों में केंद्रित होने लगे थे। इन नगरों के ह्रास का दूसरा कारण यह था कि जो व्यापारिक गतिविधियाँ यहाँ पर होती थी या इन नगरों से जुड़ी थी वे अपने परिवर्तित स्वरूप में नये मार्गों तथा नवीन नेटवर्क के द्वारा होने लगी। ऐसा प्रतीत होता है कि अब नगरीकरण विशेष रूप से उत्तरी भारत तथा पश्चिमी भारत में और दिल्ली तथा आसपास के क्षेत्रों में हुआ। जहाँ तक एक ओर पुराने नगरों की जनसंख्या में कमी आयी वहीं दूसरी ओर नये विकसित होते हुए नगरों की जनसंख्या में तेजी से वृद्धि हुई जिससे यह स्पष्ट है कि पुराने नगरों की कम होती जनसंख्या को इन नये विकसित होते नगरों ने अखिल भारतीय स्तर पर संतुलित कर दिया। लेकिन यहाँ पर एक अन्य प्रश्न पैदा होता है कि अंग्रेजी शासन से पूर्व के ये नगर अपने उत्कर्ष के समय देश के ग्रामीण एवं दूर-दराज क्षेत्रों से आने वाली अपार संपदा का केंद्र बने हुए थे और वे उस संपदा के मुख्य भाग को बाहर न निकाल पाये। जबकि दूसरी ओर औपनिवेशिक महानगरों में आने वाली इस संपदा के एक बड़े भाग को बाहर निकाल कर उसे इंग्लैंड को हस्तांतरित कर दिया जाता। औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था की यह एक अन्य विशेषता थी।

बोध प्रश्न 1

1) औपनिवेशिक काल में भारतीय व्यापारियों की स्थिति में जो परिवर्तन हुए उनका कारण बताइये। 60 शब्दों में उत्तर दें।

....

....

....

....

....

....

2) निर्यात होने वाले औपनिवेशिक व्यापार में जोर-जबरदस्ती की क्या भूमिका थी? पाँच पंक्तियों में लिखें।

....

....

....

....

....

3) आप अकाल पड़ने तथा औपनिवेशिक शासन के बीच संबंध कैसे स्थापित करेंगे? 60 शब्दों में उत्तर दें।

....

....

....

....

....

18.5 धन का हस्तांतरण

यदि आप 17वीं तथा 18वीं सदियों की ईस्ट इंडिया कंपनी के खाते बहियों का अध्ययन करें

तब आप पाएँगे कि इस कंपनी को व्यापारिक सामान के साथ-साथ भारत को एक विशाल राशि कोष अर्थात् सोने चाँदी को भेजना पड़ता था। इसका उपयोग यूरोप के बाजार में बेचने वाले सामान को खरीदने के लिए किया जाता। 1757 की प्लासी की लड़ाई तथा 1765 में कंपनी को बंगाल की दीवानी प्राप्त हो जाने के बाद भारत में आने वाले "कोष" की मात्रा में तेजी से कमी आई। यद्यपि भारतीय सामान का निर्यात यूरोप को जारी रहा। अब कंपनी ने इस सामान की भारत में खरीददारी कैसे की? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि कंपनी भू-राजस्व वसूल करती थी उसका एक भाग वह बंगाल के नवाब को अदा कर देती और शेष बचे भू-भाग से वह भारत से निर्यात होने वाली माल की खरीददारी करती थी। इस प्रकार अब कंपनी को भारत में सोने-चाँदी को लाने की आवश्यकता नहीं रही। इस पूरी प्रक्रिया का तात्पर्य था कि कंपनी एक सरकार के तौर पर कर के रूप में जो वसूल करती उसको अपने कारोबार में एक व्यापारी की तरह निवेश करती। दूसरे इसका अर्थ यह निकला कि यूरोप में बिक्री करने के लिए जिस माल का कंपनी भारत से निर्यात करती थी उसको उस पर कुछ भी खर्च करना नहीं पड़ता था कंपनी भारत में अपने क्षेत्रों से यूरोप में बेचने के लिए "नजराने" के रूप में माल को एकत्रित करती थी। इसको राजनैतिक नजराना कहा जा सकता है और यह "नजराना" इसलिए था कि भारत को इस सामान के बदले कुछ भी प्राप्त नहीं होता था, और इस तरह से यह सामान्यतः एक व्यापार नहीं था। यह "राजनैतिक" इसलिए था कि कंपनी अपनी राजनीतिक ताकत के बल पर राजस्व की वसूली करती और फिर उसको अपने कारोबार में निवेश करती। इस तरह से भारत से "धन की निकासी" का प्रारंभ हुआ या धन का एकतरफा हस्तांतरण।

कंपनी इसके लिए एक शब्द का प्रयोग करती थी जिसको वह "देशिक राजस्व" या बंगाल से वसूल किया जाने वाले अतिरिक्त राजस्व के नाम से पुकारती थी। इसी के साथ-साथ कंपनी के खातों में "व्यवसायिक राजस्व" अर्थात् व्यापार पर होने वाले लाभांश को भी दिखाया गया। जैसे-जैसे कंपनी का क्षेत्रीय प्रसार हुआ जिसका बिवरण खंड 3 में किया गया है वैसे-वैसे कंपनी के "देशिक राजस्व" में वृद्धि हुई। कंपनी ने एक क्षेत्र से अर्थात बंगाल से प्राप्त होने वाले राजस्व का प्रयोग अन्य क्षेत्रों पर सैनिक विजय पर होने वाले खर्च पर किया। देशिक राजस्व का उपयोग व्यापार में धन उपलब्ध कराने के लिए किया जाता और उसको तुरंत "व्यवसायिक राजस्व" में बदल दिया जाता। यह एक पूर्णरूपेण आत्म-निष्ट व्यवस्था थी और इसको इंग्लैंड से किसी प्रकार के धन की आवश्यकता नहीं होती थी। वास्तव में इस व्यवस्था के द्वारा यूरोप को होने वाले कंपनी के निर्यात को वित्तीय सहायता सफलतापूर्वक उपलब्ध करायी जाती थी बल्कि चीन से चाय एवं रेशम खरीदने में कंपनी के होने वाले निवेश में भी वित्तीय सहायता प्रदान की जाती। चीन के साथ होने वाले व्यापार में चीन को चाँदी का निर्यात किया जाता था जिससे भारत में मुद्रा संबंधी समस्यायें पैदा हुई। 1765 से 1813 तक यह व्यवस्था अपनी पूरी क्षमता के साथ कार्यरत थी। लेकिन 1813 में कंपनी का एकाधिकार समाप्त कर दिया गया और इसी के कारण अगले दो दशकों में कंपनी के व्यापार में तेजी से गिरावट आयी और उनकी आमदनी का मुख्य आधार "देशिक राजस्व" ही रह गया। निर्यात व्यापार में कंपनी के कर्मचारियों तथा गैर-अधिकारियों दोनों व्यक्तिगत व्यापारियों का वर्चस्व कायम हो गया। जैसा कि आपको इकाई 14 में बताया गया है कि ये व्यापारी अपने-लाभांश को इंग्लैंड को भेज देते थे। इसको धन या गैर-अंग्रेजों के माध्यम से सामान के रूप में या ईस्ट इंडिया कंपनी के माध्यम से विनिमय पत्रों के द्वारा इंग्लैंड को भेजा जाता। इस प्रकार कंपनी के खाते से भी अलग व्यक्तिगत खातों के द्वारा इंग्लैंड को धन हस्तांतरित किया गया। इंग्लैंड को भेजे जाने वाला धन न केवल लाभांश के रूप में भेजा गया बल्कि युद्धों के दौरान लूटे गये धन, क्षेत्रीय रियायतों से प्राप्त किये गये रिश्वत धन तथा भारतीय व्यापारियों के साथ धोखाधड़ी से प्राप्त किये गये धन को भी इंग्लैंड भेजा गया। एक अंग्रेज व्यापारी जी.ए. प्रिंसेप के अनुसार 1813 से 1820 के बीच प्रत्येक वर्ष केवल बंगाल से इंग्लैंड को भेजे जाने वाला धन एक करोड़ और आठ लाख रुपए था।

इस तरह से व्यापार का लाभ एवं दूसरी व्यक्तिगत आमदनियाँ इंग्लैंड को भेजे जाने वाले धन का एक भाग ही थीं। इंग्लैंड को भेजे जाने वाले धन का दूसरा भाग इंग्लैंड के अंदर समुद्री जहाज कंपनियों, बैंकों, बीमा कंपनियों आदि को अदा किया जाने वाला धन था। 1813 से 1820 तक प्रत्येक वर्ष भेजे जाने वाले धन का तीसरा स्रोत कंपनी द्वारा भेजे जाने वाला धन था। इस धन से इंग्लैंड स्थित कंपनी के अधिकारियों को वेतन, इंग्लैंड में कंपनी के द्वारा लिये गये ऋण का ब्याज, कंपनी के शेयर धारकों के लाभांश आदि की अदायगी भी की जाती थी। यह धन एक करोड़ से तीन करोड़ रुपए तक होता था। इसको "होम

चार्जेज" के नाम से जाना जाता था और 1833 में कंपनी के द्वारा अपना व्यापार समाप्त कर दिये जाने के बाद यह कंपनी की सरकार द्वारा इंग्लैंड को भेजा जाने वाला कुल धन था।

भारत के धन का दुरुपयोग करने वाली यह उपरोक्त व्यवस्था जिस समय अपनी पूर्णता पर थी ठीक उसी समय इंग्लैंड औद्योगिक क्रांति के दौर से गुजर रहा था। भारत से प्राप्त होने वाली इस संपदा ने इंग्लैंड के उस पूँजी संचयन में और वृद्धि की जिसकी उसको अपने औद्योगीकरण के लिए आवश्यकता थी। लेकिन यह इंग्लैंड के औद्योगीकरण में उन बहुत से कारणों में से एक कारण से अधिक कुछ नहीं था जिन्होंने उसके औद्योगीकरण में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। लेकिन इंग्लैंड के औद्योगीकरण ने भारत के साथ होने वाले व्यापार के पैटर्न में क्रांतिकारी परिवर्तन किये। हमें भारत के इस जटिल व्यापार के इतिहास को समझना चाहिए क्योंकि इस परिवर्तन के महत्वपूर्ण परिणाम हुए।

18.6 विदेशी व्यापार

सामान्यतः यह माना जाता है कि भारतीय दस्तकारी उत्पादनों को विदेशों में सहजता से बाजार उपलब्ध होता रहा। लेकिन 19वीं सदी के प्रारंभ में यह स्थिति उलट गई क्योंकि भारत में औद्योगिक उत्पादनों का आयात होने लगा और भारत से कृषि के उत्पादनों का निर्यात।

1858-61 के वर्षों में ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारत से जिन सूती कपड़ों का निर्यात किया उनका मूल्य लगभग 27.4 लाख रुपये था। इन वर्षों में भारत से जो औसतन निर्यात किया गया उसका यह 81 प्रतिशत था। कच्ची रेशम, काली मिर्च एवं शोरा शेष के अंतर्गत था जो कुल निर्यात के 20 प्रतिशत से भी कम था।

इस पाठ्यक्रम में जिस काल का हम अध्ययन कर रहे हैं उसके अंत में अर्थात 1850-51 में अफीम, कच्ची रूई, नील एवं चीनी मुख्य निर्यातक वस्तुएँ थी और उनका निर्यात कुल निर्यात का क्रमशः 30, 19, 11 और 10 प्रतिशत ही था। कहने का तात्पर्य यह है कि भारत अब कच्चे माल एवं कृषि पदार्थों का निर्यातक देश बन गया था और अब वह कुल निर्यात का 3.7 प्रतिशत ही सूती कपड़ों का निर्यात करता था।

1850-51 तक भारत को औद्योगिक उत्पादनों का आयात व्यापक स्तर पर होने लगा इस समय भारत को आयात होने वाले औद्योगिक उत्पादनों में सूती कपड़ों का आयात कुल आयात का 31:5% सूती धाग 9% ऊनी वस्त्र 5% तथा धातु सामानों आदि का 16% आयात होता था। इन आयात होने वाले औद्योगिक सामानों में सूती कपड़े एवं धागे का आयात विशेष उल्लेखनीय था। 1850-51 में भारत ने 1.13 करोड़ रुपये के सूती धागे और 3.37 करोड़ रुपए के सूती कपड़ों का आयात किया। यदि हम दो दशक पूर्व 1828-29 के आँकड़ों को देखें तब हमें मालूम पड़ता है कि 42 लाख रुपए मूल्य के सूती धागे और 1.18 करोड़ रुपए मूल्य के सूती कपड़ों का आयात भारत ने किया। इस तरह से हम देखते हैं कि केवल दो दशकों में ही मानचेस्टर के मिलों से तीन गुणा आयात किया जाने लगा। ठीक इसी समय में भारत से निर्यात होने वाले सूती कपड़ों की मात्रा में आश्चर्यजनक कमी आयी। अब पासा बिल्कुल ही उलट गया, भारत एक निर्यातक देश से सूती कपड़ों एवं धागे का आयात करने वाला देश हो गया। दूसरी ओर जब कि इंग्लैंड ने भारत से सूती कपड़ों का आयात बंद कर दिया और उसे अब अपने इस औद्योगिक माल के निर्यात के लिए भारत के बाजार प्राप्त हो गये इस प्रक्रिया के परिणामों के विषय में इकाई 17 में विवेचना की गई है और इसका मुख्य परिणाम यह हुआ कि भारत का अब औद्योगीकरण होने लगा। 18वीं सदी के पैटर्न की उलट तथा भारत के विदेशी व्यापार में उपभोग वस्तु के नये पैटर्न की स्थापना का प्रारंभ 19वीं सदी के दूसरे एवं तीसरे दशकों में हुआ। इस प्रक्रिया को और आगे बढ़ाने तथा भारत के बाजारों पर अधिकार करने के लिए इंग्लैंड को भारत में रेलवे की आवश्यकता थी।

18.7 भारतीय रेल और अंग्रेजी पूँजी

19वीं सदी के यूरोप की राजधानियों एवं व्यापार के क्षेत्रों में भारत या चीन या अफ्रीका या

एशिया के अन्य किसी देश को यूरोप के औद्योगिक उत्पादनों के लिए मंडी के रूप में खोलने के लिए आश्चर्यजनक तरह से प्रतीक्षा हो रही थी। 19वीं सदी में इस प्रक्रिया के लिए यूरोप की राजधानी का व्यापार के क्षेत्र में "ओपनिंग अप" शब्द बड़ा ही लोकप्रिय था। ओपनिंग अप का तात्पर्य था कि किसी भी देश को व्यापार पर लगे प्रतिबंधों को हटाकर यूरोप के देशों के साथ व्यापार करने को तैयार करना। इन प्रतिबंधों में चीन की सरकार द्वारा विदेशियों के प्रवेश पर प्रतिबंध लगाना, या यूरोपीय शक्तियों के द्वारा एक दूसरे के विरोधी दावे प्रस्तुत करना या यूरोपवासियों की आवश्यकता के अनुरूप परिवहन व्यवस्था का अभाव आदि शामिल थे। भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी के एकाधिकार विशेषाधिकार की समाप्ति के बाद ओपनिंग अप का तात्पर्य मुख्यरूप से रेलवे का विकास करना था। रेलवे का विकास करने के पीछे अंग्रेजों के उद्देश्य स्पष्ट थे। रेलवे का विकास करके वे अंग्रेजी विनिर्मित सामान का आयात करके उसे भारत के दूर-दराज के क्षेत्रों में पहुँचा सकते थे। दूर-दराज के क्षेत्रों से कच्चे माल एवं कृषि उत्पादनों को एकत्रित करके समुद्र तट पर स्थित बंदरगाहों तक लाया जा सकता था। रेलवे के विकास से भारत में कार्यरत रेलवे कंपनियों को रेलवे में पूँजी निवेश करने का भी यह अच्छा अवसर था।

इनमें से पहले दो उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए दूर-दराज के व्यापारिक केंद्रों को रेलवे के द्वारा उन समुद्र तट स्थित बंदरगाहों से जोड़ा गया जहाँ ब्रिटिश उद्योगों का विनिर्मित माल आयात होकर आता था तथा भारत से निर्यात होने वाला कच्चा सामान तथा कृषि उत्पादनों को विदेशों के लिए भेजा जाता था। ये बंदरगाह कलकत्ता, मद्रास, बंबई एवं करांची थे। ये चारों बंदरगाह अंग्रेजों की व्यापारिक गतिविधियों तथा राजनीतिक शक्ति के केंद्र थे। इन उपरोक्त दो उद्देश्यों की पूर्ति करने के साथ-साथ माल भाड़े को वसूल करना भी सरल था और आयात किये गये विनिर्मित माल को बंदरगाहों से दूर-दराज के क्षेत्रों में पहुँचाने के लिए तथा निर्यात करने के लिए दूर-दराज के क्षेत्रों से कच्चे माल एवं कृषि उत्पादनों को लाने के लिए यह सस्ती परिवहन व्यवस्था भी थी। इस प्रकार के माल ढुलाई भाड़े की नीति रेलवे से जुड़ गई तथा यह रेलवे कंपनियों की जानी-पहचानी नीति बन गई। लेकिन रेलवे की ये विशेषताएँ बाद के काल से संबंधित है जो आपके पाठ्क्रम में नहीं है।

इंग्लैंड में जो रेलवे कंपनियाँ स्थापित की गई थी वे संयुक्त स्टॉक कंपनियाँ थी और इनका विवरण इकाई 14 में किया गया है। अंग्रेज पूँजीपतियों ने इन कंपनियों के शेयरों को लंदन बाजार में खरीदा। इंग्लैंड में इन कंपनियों के शेयर खरीदने के लिए तथा उनके व्यापार को रेलवे में सुरक्षित बनाने के लिए भारत की सरकार ने उनके द्वारा निवेश की गई पूँजी पर 5% का ब्याज देने की गारंटी दी। इस प्रकार सभी भारतीय रेलवे कंपनियाँ वास्तव में अंग्रेजी रेलवे कंपनियाँ थीं जिनको "गारंटी ब्याज समझौते" के द्वारा सुरक्षित किया गया था।

लेकिन इसका परिणाम भारत के लिए कई कारणों से अच्छा न रहा।

अ) सरकार के द्वारा ब्याज देने की गारंटी देने का तात्पर्य था कि रेलवे में लाभ होता या नुकसान लेकिन भारतीय कर दाताओं से निश्चय ही धन अंग्रेज निवेशकर्ताओं को दिया जाना था। इससे रेलवे के निर्माण एवं प्रबंधन में अधिक खर्च एवं मितव्ययता को बढ़ावा मिला।

ब) गारंटी दिये गये ब्याज को इंग्लैंड में स्टेरलिंग (विदेशी मुद्रा) में अदा करना था जिससे भारत के विदेशी विनिमय खर्च में वृद्धि हुई जिसको होम चार्जेज कहा जाता था।

स) अंग्रेजी रेलवे कंपनियाँ भारत को इंजन, रेल, मशीन और यहाँ तक कि कोयले का आयात करती थी। कोयले का आयात संभवत: एक दशक तक किया गया। अधिकतर दूसरे देशों में जहाँ पर रेलवे का निर्माण किया गया उसी के साथ-साथ रेलवे के सहायक उद्योगों जैसे कि इंजिनियरिंग उद्योगों, लोहे एवं स्टील का उत्पादन, खानों आदि का निर्माण हुआ। भारत में इस प्रकार के सहायक उद्योगों का विकास नहीं किया गया। इसका कारण यह था कि रेलवे को जिस भी सामान की आवश्यकता होती उसको ये रेल कंपनियाँ आयात कर लेती।

यदि रेलवे कंपनियाँ भारत की वित्तीय व्यवस्था के लिए इतनी अधिक खर्चीली साबित हुई तब भारतीय सरकार ने उनका प्रारंभ भारत में क्यों किया और उनको गारंटी प्रदान क्यों की। लेकिन भारत में रेलों का निर्माण केवल अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले बोझ तक सीमित

न था बल्कि इसके निर्माण के साथ सामरिक एवं राजनीतिक उद्देश्य मूलभूत रूप से जुड़े थे। रेलवे योजना की अनुमति प्रदान करते हुए अपने सुप्रसिद्ध स्मरण-पत्र में गवर्नर जनरल लॉर्ड डलहौजी ने लिखा "रेलवे से सरकार को भारत के दूर-दराज के भागों पर नियंत्रण करने, आंतरिक अशांति को समाप्त करने तथा विदेशी आक्रमण का सामना करने के लिए सेना को गतिशील बनाने तथा भारतीय सीमाओं को रूस तथा अन्य शक्तियों से सुरक्षित करने में मदद मिलेगी।" इसके अतिरिक्त ब्रिटिश सरकार एवं भारतीय सरकार पर उन कई समूहों का दबाव भी था जो आर्थिक एवं राजनीतिक तौर पर शक्तिशाली थे। ये ऐसे पूंजीपतियों के समूह थे जो रेलवे कंपनियों में पूंजी का निवेश करना चाहते थे। ये वे समूह थे जो रेलवे इंजनों की तलाश में थे। ऐसे भी पूंजीपति थे जो अंग्रेजी विनिर्मित माल को भारत जैसे विशाल देश के बाजार में भारत में रेलवे के निर्माण हो जाने पर बेचने की आशा करते थे।

जहाँ एक ओर यह पूर्णरूपेण सत्य है कि भारत में रेलवे का निर्माण अंग्रेज पूंजीपतियों तथा अंग्रेज भारतीय सरकार के बीच अपने-अपने हितों को पूर्ण करने के लिए 1850 के दशक में किया गया वहीं भारतीय दृष्टिकोण से इसके कुछ सकारात्मक परिणाम भी निकले। रेलवे के साथ-साथ तकनीकी भी भारत आयी और रेलवे के कारखानों ने नयी तकनीकी शैली को विकसित किया। रेलवे ने देश को एकीकृत करने एवं राष्ट्रीय बाजार को स्थापित करने में भी अपना योगदान दिया। समकालीन दार्शनिक कार्ल मार्क्स ने इसका पर्यवेक्षण करते हुए लिखा कि भारतीय रेलवे किसी न किसी रूप में आधुनिकीकरण में अग्रणी थी। यह सत्य भी हो सकता है लेकिन औपनिवेशिक सरकार के द्वारा भारत में रेलवे की स्थापना का मुख्य लक्ष्य अंग्रेजों के आर्थिक हितों से ही जुड़ा था।

बोध प्रश्न 2

1) आप "धन की निकासी" से क्या समझते हैं?

....
....
....
....
....
....

2) अंग्रेज पूंजीपति भारतीय रेलवे के विकास में क्यों रुचि रखते हैं? उत्तर 50 शब्दों में दीजिये।

....
....
....
....
....

3) भारत के विदेश व्यापार पर औपनिवेशिक शासन का क्या प्रभाव पड़ा? उत्तर 100 शब्दों में दें।

....
....
....
....
....
....

18.8 सारांश

आपने इस इकाई में 18वीं सदी के अंत तथा 19वीं सदी के प्रारंभिक दशकों की अर्थव्यवस्था की निम्नलिखित विशेषताओं का अध्ययन किया :

- आंतरिक व्यापार के क्षेत्र का,
- दस्तकारों एवं किसानों के उत्पादनों के लिए बाजार का,
- भारत से इंग्लैंड को होने वाले धन के प्रवाह का,
- विदेश व्यापार के पैटर्न का, और
- भारत का ब्रिटिश औद्योगिक सामान के लिए खुलने का।

आपने इन परिवर्तनों का इकाई 14 में वाणिज्य से औद्योगिक साम्राज्यवाद में हुए रूपांतरण में, इकाई 15 में ब्रिटिश भारत में भू-राजस्व नीति में, इकाई 16 में कृषि के व्यवसायीकरण और इकाई 17 में अनौद्योगीकरण के दृष्टिकोणों से समझने का प्रयास किया। इन सबके आधार पर आप उस औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था के स्वरूप को समझने का प्रयास कर सकते हैं जो 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में अपनी अधिक विकसित अवस्था में पैदा हुई।

18.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) आप अपने उत्तर में व्यापार के चरित्र में होने वाले परिवर्तन, अंग्रेजों की बढ़ती राजनीतिक शक्ति आदि को उद्धृत करें। देखें उपभाग 18.2.2.

2) देखें भाग 18.3

3) अपने उत्तर में शीघ्र होने वाले युद्ध, अधिक भू-राजस्व की माँगें, ताकत के बल पर व्यवसायिक फसलों का उत्पादन आदि शामिल करें। देखें भाग 18.4

बोध प्रश्न 2

1) देखें भाग 18.5

2) माल की ढुलाई की सुविधा, शहर एवं ग्रामीण क्षेत्रों के बीच संपर्क स्थापित करने, अच्छा मुनाफा प्राप्त करने के लिए पूँजी निवेश करने आदि को अपने उत्तर में शामिल करें। देखें भाग 18.7

3) आपका उत्तर भारत में विनिर्मित सामान के आयात, भारत से निर्यात होने वाले कच्चे माल में होती वृद्धि, व्यापार संतुलन प्रतिकूल होना आदि पर केंद्रित होना चाहिए। देखें भाग 18.6